Anusandhanvallari
Vol 2024, No.1
December 2024
ISSN 2229-3388

उपनिषदीय धर्म मीमांसा

Smriti Bala

PhD (Research Scholar), Department of Sanskrit, Delhi University

सारांश: धर्म शब्द का अर्थ है धारण करनाए बनाए रखना या पुष्ट करना। सम्पूर्ण विश्व धर्म से ही शासित हो रहा है। प्राकृतिक नियम को धर्म रूप में परिभाषित किया जा सकता क्योंकि इस नियम में बंधकर ही सूर्यए चंद्रमाए तारामंडल इत्यादि अपने नियत पथ का गमन करते हैंए दूसरी ओर मानव और उसके परिवेश अर्थात् समाज को शासित और नियमित करने का कार्य धर्म करता है जिससे दोनों की उर्ध्व.गति और समृद्धि सुनिश्चित होता है। धर्म का आरंभिक और मूल प्रतिपादन वेद में किया गया है और इस भारतीय धर्म चिंतन का उत्कर्ष उपनिषदों में प्राप्त होता है। मानव जाति के आध्यात्मिक इतिहास में उपनिषद् साहित्य उस विस्तृत अध्याय की भांति है जो युग.युगांतर से भारतीय धर्म.दर्शन और जीवन को निरंतर अनुशासित करता आ रहा है। ब्रह्मज्ञान के अधिकारी को साधन.चतुष्ट्य संपन्न होना ही चाहिए। धर्मनिष्ठ अधिकारी ही अज्ञाननिवृत्ति तथा परमानंद प्राप्तिरूप प्रयोजन की सिद्धि कर सकता है। उपनिषद् हमें धर्मानुसार त्यागपूर्वक भोग का उपदेश देता है।

कूटशब्द. उपनिषद्ए धर्मए नीतिए ऋतए संभूति.असंभूतिए प्रेय.श्रेय।

श्धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठाश् धर्म ही विश्व का आश्रयभूत है एवं सम्पूर्ण जगत की प्रतिष्ठा धर्म में ही है। भारतीय परम्परा में नैतिकमूल्य धर्म का पर्याय हैं। श्धर्मश् शब्द श् धृश् धातु में श्मन्श् प्रत्यय के योग से निष्पन्न है। जिसका अर्थ है धारण करनाए बनाये रखनाए पुष्ट करना। महाभारत के शान्तिपर्व में कहा गया है कि. धारणाद्धर्म इत्याहुः धर्मेण विधृताः प्रजाः।[1] सम्पूर्ण विश्व धर्म से शासित हो रहा है। सूर्यए चंद्रमाए तारामंडल इत्यादि सब धर्म को धारण करते हैं। मानव भी धर्म से बंधा हुआ है। मानव समाज का अंग है और अपने उत्कर्ष के लिए उसे समाज की अपेक्षा है। समाज का भी समाजत्व इसी में है कि वह विभिन्न प्रकार की मानस.वृत्तियों से युक्त व्यष्टि मानवों की स्थिति का सामंजस्य करता है। धर्म से युक्त मनुष्य इसमें योगदान करता है। इस कारण धर्म में ही समाज की प्रतिष्ठा है। अतः धर्म वह तत्त्व है जिसके द्वारा बृहत.से.लघु तक सबकुछ शासित हो रहा है और निर्बाध गति से चलता हुआ अभ्युदय को ला रहा है। श्यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिरू स धर्मरूश् अर्थात् जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति हो वह धर्म है। धर्म का आरंभिक एवं मूलतः प्रतिपादन वेद में किया गया है। ऋग्वेद में श्धर्मश् शब्द का प्रयोग धार्मिक आदेश के रूप में हुआ है। श्रुति द्वारा जो कर्म विधि रूप से विहित होते हैं ए वे धर्म हैं। भारतीय जीवन.दृष्टि में मानव.कर्तव्यों के चार लक्ष्य ,पुरुषार्थद्ध हैं. धर्मए अर्थए काम ए मोक्ष। इन चार पुरुषार्थों में धर्मए अर्थ साधन हैं एवं कामए मोक्ष साध्य। इन दोनों में भी मोक्ष उच्चतम और जीवन का अंतिम लक्ष्य है। अर्थ और काम को धर्मयुक्त होना अनिवार्य है। काम का उपादानए अर्थ और नियमन धर्म है। काम का सेवन धर्म और अर्थ के द्वारा ही हो सकता है।[2]

ऋग्वेद में श्धर्मश् शब्द का प्रयोग धार्मिक आदेश के रूप में हुआ है। वहाँ कहा गया है कि. श्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । श् ऋग्वेद में धर्म श् ऋतश् और श्सत्य के रूप में देखा जा सकता है। इस भारतीय धर्म चिंतन का उत्कर्ष उपनिषदों में प्राप्त होता है। मानव जाति के आध्यात्मिक इतिहास में उपनिषद् साहित्य उस विस्तृत अध्याय की भांति है जो युग.युगांतर से भारतीय धर्म.दर्शन और जीवन को निरंतर अनुशासित करता आ रहा है। आचार्य शङ्कर ने उपनिषदों के सन्दर्भ में कहा है कि ष्उपनिषादयति सर्वानर्थकरं संसारं विनाशयतिए संसारकारणभूतामविद्यां च शिथिलयतिए ब्रह्म च गमयतिष् अर्थात् सभी अनर्थों को उत्पन्न करने वाले संसार का यह विनाश करती हैए संसार के हेतु स्वरूप अविद्या को शिथिल करती है और ब्रह्म की प्राप्ति कराती है। डॉण राधाकृष्णन ने वेदान्त का मूल उपनिषदों को बताते हुये इसे वेदों का सार कहा है। उनके अनुसार उपनिषदों को वेदों का सार कहने का मुख्य कारण है कि वेद की शिक्षा का प्रधान उद्देश्य और अभिप्राय उपनिषदों में ही मिलता है।[3] उपनिषदों में जीवन और जगत

[1] महाभारत, शान्ति पर्व, 109/11

[2] धर्मार्थाभ्यां कामं सेवेत। धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।। भगवद्गीता, 7.11

[3] राधाकृष्णन, उपनिषदों की भूमिका, पृष्ठ-21

Anusandhanvallari
Vol 2024, No.1
December 2024
ISSN 2229-3388

सम्बन्धी बहुत गहरे और सूक्ष्म विचार पाए जाते हैं और प्रायः यह समझा जाता है कि उसमें जीवन सम्बन्धी रहस्यों का पूर्ण और संतोषजनक उद्घाटन मिलता है।[4] यहां हमको अपनी संकुचित दृष्टि को विस्तृत करने का उपदेश प्राप्त होता है। ऋग्वेद में ऋत रूप में आने वाला अनतिक्रमणीय धर्म सिद्धांत ही कालांतर के साहित्य मेंए व्यवहार जगत में धर्मए नीति इत्यादि के रूप में परिभाषित होते गया। आद्यंत उपनिषद् यद्यपि जीवए जगत्ए अविद्या एब्रह्मए मोक्ष इत्यादि विषयों का ही विवेचन करता हैए जिनका परम् लक्ष्य परब्रह्म साक्षात्कार या आत्मज्ञान की प्राप्ति है तथापि उपनिषद् के अनुबंध चतुष्टय रूप श्प्रयोजनश की सिद्धि में धर्म की महती उपयोगिता है। श्री शङ्कराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के प्रथम सूत्र भअथातो ब्रह्मजिज्ञासा के भाष्य में श्अथश शब्द की व्याख्या में यही बतलाया है कि ब्रह्म मीमांसा में ब्रह्म अर्थात् परमात्मा को समझने का अधिकारी वही है जो श साधन. चतुष्ट्य सम्पन्नश हो। साधन.चतुष्ट्य में धर्म से शासित जीवन का उल्लेख प्राप्त होता है। विवेकए वैराग्यए षटसम्पत्ति.शमए दमए तितिक्षाए उपरतिए श्रद्धा और समाधान तथा मुमुक्षा का इसमें समावेश है। धर्मनिष्ठ अधिकारी ही अज्ञाननिवृत्ति तथा परमानंदप्राप्तिरूप प्रयोजन की सिद्धि कर सकता है। धर्म उपनिषद् का विवेच्य विषय नहीं होने से इसका विस्तार पूर्वक वर्णन यहां प्राप्त नहीं है तथापि प्रसंगवस अनेक संदर्भों में धर्म और व्यवहार जगत में मानव कर्त्तव्य से संबंधित तत्त्व प्राप्त होते हैं। धर्म के संबंध में बृहदारण्यकोपनिषद् में प्राप्त है कि धर्म से उत्कृष्ट कुछ नहीं है।[5] श्रेयोरूप धर्म क्षत्र का भी क्षत्र यानी क्षत्रिय का भी नियंता है। क्षत्रिय का नियंता होने से धर्म से ऊपर कोई नहीं हैए क्योंकि उसी के द्वारा सभी का नियमन होता है।बृहदारण्यकोपनिषद् के शांकरभाष्य में उल्लेख आता है कि धर्म बल का स्त्रोत है। जो अबलीयान् यानी बहुत दुर्बल होता हैए वह भी बलीयान् यानी अपने से अधिक बलवान को धर्मरूपी बल के द्वारा जीतना चाहता हैए जिस प्रकार कि लोक में सबसे बलवान राजा की सहायता से साधारण कुटुंबी पुरुष अपने से अधिक बलवान का पराभव करना चाहता है। अर्थात् उसी प्रकार धर्म रूपी बल से जीतना चाहता है और धर्म रूपी बल में उतना सामर्थ्य है। अतः सबकी अपेक्षा बलवत्तर होने के कारण धर्म सबका नियंता है।[6] लौकिक पुरुषों द्वारा व्यवहार किया जानेवाला जो व्यवहाररूप धर्म हैए वह निश्चित रूप से सत्य ही है। सत्य शास्त्रानुकूल अर्थ का नाम है। वह शास्त्रानुकूल अर्थ ही अनुष्ठान किए जाने पर धर्म नामवाला होता है और शास्त्र के तात्पर्यरूप से ज्ञात होने पर वही सत्य कहलाता है। अर्थात् शास्त्र का तात्पर्य सत्य है और आचरण में आने पर वही धर्म कहलाता है।[7] यहां शास्त्र का तात्पर्य शास्त्रों में विहित धर्म से है। धर्म वस्तुतः व्यवहार जगत में आचार और नीति रूप में है जो मनुष्य के कार्यों को नियमित करता है।

जीवन में कर्म की अपरिहार्यता है । ईशावस्योपनिषद् शांकरभाष्य में वर्णित है कि जो जीने की इच्छा करे वह कर्म करते हुए ही जीना चाहे । [8] अतः प्रथम प्रश्न यह आता है कि क्या मनुष्य किसी भी संकल्प को चुनने में स्वतंत्र है या नहीं। संकल्प स्वातंत्र्य के विषय में उपनिषदों में अलग से तो विचार नहीं किया गया है परंतु ये भी नहीं कहा गया है कि वह परतंत्र है। बृहदारण्यकोपनिषद् में आया है कि मानव कामए संकल्पए और कर्म का समीकरण मात्र हैए जैसी उसकी कामना होगी वैसे ही उसके संकल्प होंगे और जैसे उसके संकल्प होंगे वैसे ही उसके कर्म होंगे। यहां कामनाए संकल्प ए कर्म तथा कर्मफल का समीचीन विवेचन है। [9] कठोपनिषद् में नचिकेता को यमाचार्य श्रेय और प्रेय का मार्ग बताता है। उनमें नचिकेता श्रेय मार्ग का अनुसरण करता हैए जबकि वह इस बात के लिए पूर्ण स्वतंत्र था कि वह श्रेय को अपनाए या प्रेय को।[10] ईशावस्योपनिषद् में विद्या एवं अविद्याए संभूति और असंभूति इन सभी विषयों में से उसे चुनने की स्वतंत्रता है।[11] उपनिषद् यही कहती है कि हमें अपने आप को पहचानना चाहिए।[12] वास्तव में हमारे अंदर जो पाशविक प्रवृतियां हैं ए अहम् की अभिलाषाएं और महत्त्वकांक्षा हैय ये सब हमारे जीवन के निम्न स्तर हैं। आत्मा के विकास के लिए और परम सत्ता को प्राप्त करने के लिए विरोधी भाव को दबाना होगा। उपनिषदीय धर्म तर्कसंगत और विचारशील है। इसमें जीवन केवल विषय उपभोगार्थ नहीं है। कठोपनिषद् में वर्णन आता है कि आत्मा को रथी जानोए शरीर को रथए बुद्धि सारथी हैए मन लगामए घोड़े

[4] भारतीय नीति-शास्त्र का इतिहास, भीखनलाल आत्रेय, पृष्ठ-56
[5] 'यद्धर्मस्तस्माद्धर्मात्परं नास्त्यथो' बृहदारण्यकोपनिषद् , अध्याय 1, ब्राह्मण 4, पृष्ठ 290
[6] बृहदारण्यकोपनिषद्, शांकरभाष्य, अध्याय 1, ब्राह्मण 4, पृष्ठ 291
[7] वही
[8] कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतंसमा:। ईशावस्योपनिषद् 1
[9] वैदिक दर्शन , जयदेव वेदालंकार, पृष्ठ 383
[10] कठोपनिषद् 2.1.2
[11] ईशावास्योपनिषद् 9-12
[12] कठोपनिषद 1.5.24

इंद्रियां तथा सांसारिक पदार्थ मार्ग हैं। बुद्धिमान लोग इंद्रियों एवं मन से संयुक्त आत्मा को ही भोक्ता कह कर पुकारते हैं। जो मानसिक बल से युक्त है उसकी इंद्रियां वश में रहती हैं किंतु जो व्यक्ति दुर्बल और अज्ञानी हैए उसकी इंद्रियां उसके वश में न रहकर नटखट घोड़ों की तरह रथी के वश से बाहर होकर इधर.उधर निरुद्देश्य रूप से भटकती हैं। इसके अतिरिक्त वर्णन आता है कि जिनमें कुटिलता ए असत्य और धोखा नहीं है और जिनका जीवन पवित्र हो चुका हैए वे विकसित होकर जिस.जिस लोक की प्राप्ति का मन में संकल्प करते हैं और जिन.जिन पदार्थों की वांछा करते हैं उन.उन लोकों एवं उन पदार्थों को उपलब्ध कर लेते हैं।[13] अतः इन उपनिषदीय वर्णनों से यह ज्ञात होता है कि उपनिषदें कर्म स्वातंत्र्य के सिद्धांत का ही प्रतिपादन करती हैं। कर्म स्वातंत्र्य के पश्चात् दूसरा प्रश्न आता है कि मनुष्य का कर्म किन नियमों से शासित हो अर्थात् धर्म क्या है। इसके लिए ऋषि कहते हैं श हे पूषण! सत्य का द्वार सुवर्ण के ढक्कन से ढका हुआ हैए आप इसको हमारे सामने से हटाइए ताकि मैं सत्य और धर्म को देखूं।[14] मनुष्य धर्म और कर्तव्यों का वर्णन अनेक रूपों में यहां प्राप्त होता है। प्रकृति में सचेतन और शिक्षात्मक तैत्तिरीयोपनिषद् में मनुष्य के कर्मों को शासित करने वाले अनेक धार्मिक तत्त्वों का उपदेश प्राप्त है। इसमें धर्म का आदर करनेए सत्य बोलनेए तपए संयम और शांति की साधना करनेए नित्य और नैमित्तिक हवन यज्ञ करने ए अतिथि सत्कार करने ए मनुष्यता का पालन करने एवं संतान उत्पन्न करने का आदेश दिया गया है। [15] इसमें स्नातक के दीक्षांत के समय आचार्य द्वारा पुनः दिए जाने वाले नैतिक उपदेश का भी वर्णन आता है जिसमें आचार्य समान्यरूप में स्नातक को वही कर्म करने का उपदेश करते हैं जो समाज की दृष्टि में निर्दोष हो. श्श्मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणिए तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि ।[16] कर्म के सम्बन्ध में सन्देह होने पर आचार्य अपने क्षेत्र के दक्षए विचारशीलए सौम्य एवं धर्मनिष्ठ ब्राह्मणों के आचरण के अनुसार कर्म करने का उपदेश देते हैं.भअथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः युक्ता अयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन्। तथा तत्र वर्तेथाः ।[17] अंत में आचार्य कुछ विकल्प प्रस्तुत करते हैं जिसमें प्रत्येक अवस्था में श्रेष्ठ करने का निर्देश है ए चाहे आस्था हो या न हो। दान के पक्ष में वर्णन आता है कि श्रद्धा से ए अश्रद्धा सेए भय से ए लज्जा से ए उदारता से दान देना चाहिए अर्थात् लेने की प्रवृत्ति की अपेक्षा हमेशा देने का ही उपदेश किया गया है। छान्दोग्योपनिषद् में घोर अंगिरस और देवकी पुत्र कृष्ण के संवाद में सद्गुणों का एक सूची के रूप में वर्णन प्राप्त होता है। घोर अंगिरस के अनुसार मनुष्य के प्रधान सद्गुण तपए दानए ऋजुताए अहिंसा और सत्य हैं। छान्दोग्य में ही मनुष्य के पांच महापातकों का उल्लेख आता है जिसमें वर्णित है कि वित्त की चोरीए सुरापनए गुरुपत्नी के साथ गमनए ब्राह्मण हत्या और व्यभिचार नरकागामी मार्ग हैं। इसमें जीवन को यज्ञ का रूप देकर कहा गया है कि तपस्याए दानए आर्जवए अहिंसा और सत्यवचन उस यज्ञ की दक्षिणा है अर्थात् जीवन में इनका ग्रहण करना चाहिए क्योंकि दक्षिणा के आभाव में यज्ञ नष्ट हो जाता है।[18] सत्य में मानव विश्वास को दृढ़ करने के उद्देश्य से स्वतः मुण्डकोपनिषद् में वर्णित है.भ सत्यमेव जयते नानृतंए सत्येन पन्था विततो देवयानः।[19]

बृहदारण्यकोपनिषद् में एक आख्यायिका मे धर्मोपदेश द्वारा सद्गुणों को उपस्थापित किया गया है। देवए मनुष्यए असुर तीनों को प्रजापति ने श्दश अक्षर का उपदेश दिया और तीनों ने अपनी आवश्यकता अनुसार उपदेश ग्रहण किया। देवताओं ने दाम्यम ;इन्द्रिय दमन काद्धए मनुष्यों ने दत्त ;दानद्ध और असुरों ने दयध्वम् ;दया करोद्ध का उपदेश ग्रहण किया।[20] अर्थात् जो देवों के समान उच्च अवस्था को प्राप्त हैंए उनके लिए दमन करो का आदेश है ए नहीं तो वे अभिमान से युक्त होकर सामर्थ्यवान होने के कारण क्रूर कर्मों में प्रवृत्त हो सकते हैं। सामान्य मनुष्य दान करे क्योंकि दान की प्रवृत्ति से समाज समृद्धशाली बनता है। जो दानव और अनर्थकारी प्रवृत्ति के साथ अपरिमित शक्ति वाले हैं उनके लिए दयावान बनने का आदेश है। अतः स्पष्ट है कि तीन प्रकार की भिन्न भिन्न मनोवृत्ति प्रधान मनुष्यों के लिए तीन अलग अलग मुख्य गुण.धर्म हैं।

आधुनिक संदर्भ में मनुष्य के समक्ष यह प्रश्न आता है कि क्या ज्ञान प्रधान उपनिषद् भौतिक जीवन को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैंध् और यदि नहीं तो भौतिकता को किस प्रकार महत्ता यहां प्राप्त हैध् धर्मयुक्त भौतिक जीवन क्या है और मनुष्य की श्रेय और प्रेय में क्या सामंजस्यता हो।

[13] मुण्डकोपनिषद 3.1.10
[14] बृहदारण्यकोपनिषद् 4.4.4
[15] तैत्तिरीयोपनिषद् , शीक्षावल्ली, नवम् अनुवाक
[16] तैत्तिरीयोपनिषद्, 1/11
[17] वही
[18] छांदोग्योपनिषद् 3/17/4
[19] मुण्डकोपनिषद्, 3/1/6
[20] बृहदारण्यकोपनिषद् 5/2

उपनिषद् में मानव.जीवन के आध्यात्मिक एवं भौतिक इन दोनों तत्त्वों का समन्वय इस प्रकार किया गया है कि मानव भौतिक जगत् में रहकर भी आत्मज्ञान की प्राप्ति कर सकता एवं उच्च नैतिकमूल्यों से अपने जीवन को समृद्ध बना सकता है। इसका स्पष्ट उदाहरण बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य के प्रसंग में प्राप्त होता है जहाँ याज्ञवल्क्य जनक की सभा में शास्त्रार्थ में विजय की साथ.साथ गाय एवम् अन्य भौतिक समृद्धि की वस्तुओं की माँग करते हैं। तं होवाच भ याज्ञवल्क्यए किमर्थमचारीरूए पशूनिच्छन् अण्वन्तानिति । उभयमेव सम्राडिति होवाच।[21] श्वेताश्वतरोपनिषद् में उसी प्रकार की प्रार्थना का उल्लेख है जैसे वेदों में अपने परिवार की सुरक्षा की चिंतापूर्वक प्रार्थना हमें प्राप्त होती है।[22] इस प्रकार उपनिषद् में व्यवहार और आध्यात्मिकता का सामंजस्य प्रस्तुत किया गया है।

उपसंहार

धर्म का आधार दर्शन है। दर्शन एवं धर्म परस्पर पूरक हैं। बिना धर्म से शासित जीवन के दार्शनिक बुद्धि का उदय नहीं हो सकता। न दर्शन की बातें समझ में आतीं हैं न उसमें रुचि ही होती है । अच्छा दार्शनिक होने के लिये मनुष्य को धार्मिकए नैतिकए सदाचारी और शान्तमना होना अत्यन्त आवश्यक है। उपनिषदों में यद्यपि प्रतिपाद्य विषय रूप में जीवन को अमृतमय बनाने की समस्या का समाधान क्रांतिकारी रूप में प्राप्त होता है ए फिर भी संसार में रहते हुए ही धर्मानुसार त्यागपूर्वक भोग का उपदेश भी उपलब्ध होता है। यहां एकदम संसार को छोड़कर भाग जाने का उपदेश नहीं है और जहां ऐसा कुछ झलक प्रतीत भी होती है वहां विरक्त हो जाने का तात्पर्य मनुष्य जाति के लिए निराशा एवं संसार को त्यागने का एकमात्र आदेश नहीं है अपितु केवल ऐन्द्रियक सुख ही सबकुछ नहीं इससे परे भी कुछ हैएऐसा समझना है।[23] यही कारण है कि हमें ईशोपनिषद् में विद्या और अविद्याए संभूति और असंभूति का सामंजस्य प्राप्त होता है।[24] अतः धर्म के अनुपालन पूर्वक कर्म का सामंजस्य उपनिषदों का तात्पर्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

१. वेदालंकारए जयदेवण (2017द्धण *वैदिक दर्शन*ण न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशनण

२. *ईशावास्योपनिषद् ए शांकरभाष्य सहित* ;24वाँ संस्करण)ण (1993द्धण गीता प्रेसण

३. रानाडेए आर. डी. (1926द्धण *कंस्ट्रक्टिव सर्वे ऑफ उपनिषदिक फिलॉसफी*ण ओरिएंटल बुक एजेंसीण

४. *बृहदारण्यकोपनिषद् ए शांकरभाष्य सहित*ण (1968)ण गीता प्रेसण

५. आत्रेयए भीखनलालण (1964द्धण *भारतीय नीति-शास्त्र का इतिहास* ;प्रथम संस्करण)ण हिन्दी समितिण

६. राधाकृष्णनए एस. (2001द्धण *उपनिषदों की संदेश*ण राजपाल एण्ड सन्सण

७. *कठोपनिषद् ए शांकरभाष्य सहित* ;23वाँ संस्करण)ण (1996द्धण गीता प्रेसण

[21] R.D. Ranade, Constructive Survey of Upanishadic Philosophy , Page, 299

[22] श्वेताश्वतरोपनिषद् 4.22

[23] वैदिक दर्शन, जयदेव वेदालंकर, पृष्ठ-392

[24] ईशावास्योपनिषद् 2.9,10